AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

महाकवि कालिदास विरचित अभिज्ञानशाकुन्तलम नाटक का ललित कलात्मक विवेचन

ORIGINAL ARTICLE

Author
देवेन्द्र कुमार नाई
शोधार्थी
संस्कृत विभाग
भारती विश्वविद्यालय
दुर्ग, छत्तीसगढ़, भारत

शोध सार

सम्पूर्ण वसुधा में अपने शाश्वत वैभव के लिए विख्यात भारत भूमि पर सभ्यता के उषा काल से ही अनेक विभूतियों ने जन्म लेकर अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से अपने जीवन को धन्य किया है। संस्कृत साहित्य के क्षेत्र मे कविता कामिनी विलास कविकुलकुमुदकलाधर वाकविलास महाकवि कालिदास ने अपनी कालजयी रचनाओं विशेषतः अभिज्ञानशाकुन्तलम् के माध्यम से विद्वत समाज को अचम्भित अनुरंजित एवं आनंदित किया है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक संस्कृत साहित्य मे ही नही अपितु विश्व साहित्य मे अपना अप्रतिम वैशिष्टय एवं उत्कृष्ट स्थान रखता है। अभिज्ञानशांकुन्तलम नाटक का लालित्य एवं काव्य सौष्ठव ललित कलाओं– वास्तुकला, मूर्तिकला ,चित्रकला, संगीतकला एवं काव्यकला की अभिव्यंजना से और भी मधुर एवं मनोहर हो गया है। प्रस्तुत शोध पत्र मे महाकवि कालिदास के नाटक अभिज्ञानशांकुन्तलम् का पूर्वोक्त ललित कलाओं के परिपेक्ष मे अनुशीलन किया गया है।

मुख्य शब्द

संस्कृत, मेघप्रतिक्षिन्न, परमभागवत, कालिदास, नाटक.

भूमिका

विश्व मे सर्वाधिक प्राचीन एवं वैज्ञानिक भाषा संस्कृत में सुदीर्घ नाट्य परम्परा प्राप्त होती है। संस्कृत नाट्य परम्परा में नाटक को 'रूप' के रूप में परिभाषित किया गया है। यह अभिनय के माध्यम से मानव मनोभावों, आदर्शों एवं चरित्र की अनुकृति है। आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार नाटक शब्द की उत्पत्ति 'नट' शब्द से हुई है। जब किसी नाटक का पात्र स्वभाव एवं स्वरूप को त्याग कर दूसरे अर्थात् 'पर' का रूप धारण कर लेता है, तो वह नाट्य या रूप कहलाता है। सारतः किसी पौराणिक व प्राचीन चरित्र पर आधारित ऐसी कथा को नाट्य कहा जाता है[1]:

नाट्य तन्नाटकंचौव पूज्यं पूर्व कथा युतम् अभिनय्

भारतीय नाट्य परम्परा पर प्रकाश डालते हुए भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में नाट्य की परम्परा का सविस्तार उल्लेख किया है। आचार्य भरत मुनि के अनुसार सहृदय के चित्त में रस की उत्पत्ति का आधार है। इस प्रकार नाट्य वह रसाश्रय है जो मानव चरित्र की सुख दुःखात्मक बहुविधता की प्रतिफलात्मक अभिव्यक्ति करता है। रस के बिना विभावादि पदार्थ व्याख्यान करने के लिए बुद्धि में नही आते है। इसका तात्पर्य यह है कि रस के बिना आनन्द की उत्पत्ति होना असम्भव है[2]:

नहि रसाद्वते कश्चिदर्थ प्रवर्तते यतश्च तं विनाअर्थः।
प्रयोजनं प्रीति पुसस्सरं व्युत्पत्तियय न प्रवर्तत।।

इसी प्रकार नाट्य के स्वरूप को अभिव्यक्त करते हुए दशरूपक के रचियता धनन्जय के अनुसार, ''अवस्था का अनुकरण ही नाट्य है[3]:

अवस्थानुकृतिम् नाट्यम्।

नाटक के माध्यम से विभिन्न परिस्थितियों, परिदृश्यों एवं मनोभावों का सांगोपांग निरूपण किया जाता है। नाटक के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए टीकाकार धनिक की मान्यता है कि काव्यों में जो राम आदि नायकों की अवस्थाओं में वर्णित है, उसका अभिनय के द्वारा समाज सन्मुख अपने में ''रामत्व'' की प्रतीति करवाना ही नाट्य है।[4]

काव्योनिबन्द्ध धीरोद्वत्ताद्यवस्थानुकारः।
वतुर्विधाभिनयेन तादाभ्यापत्तिनट्यिम्।।

पण्डित जगन्नाथ भी इन्ही विकल्पों को ह्रदयंगम करते हुए लिखते है कि भावना विशेष रूप दोष की महिमा से सामाजिक अपनें को दश्यत्व से आच्छादित मानता है। यदि कोई यह कहे कि राम व दुष्यन्त पहले हो चुके थे, वह राजा थे सामाजिक तो अभी वर्तमान में है, वह सामान्य उपरोक्त शंका के समाधान में कहा जा सकता है कि भावना विशेष रूप से दृश्य की महिमा से दृश्यता आदि अभेद बृद्धि अच्छी तरह हो जाती है, क्योंकि काव्यों में दुष्यन्त, शकुन्तला आदि वर्णित हैं। वे धर्म विद्या धर्मों का बोध कराते है। इस प्रकार दुष्यन्तशकुन्तलात्वेन से दुष्यन्त एवं शकुन्तला की प्रतीति होती है[5]:

भावना विशेष रूपस्य दोषस्य महिम्ना कल्पित।
दुष्यन्ताद्य वच्छादिते स्वात्मनि इति स्वस्मिन
दुष्यन्ताम् भेदे बुद्विस्तु वाद्यबुद्वि पराहतोत्यादि
कमास्तम् इति तेन स्वात्मेनि दुष्यन्ताद्य भेदबुद्विरपि सूपपादा।।

नाट्य दर्पण के अनुसार अनुरंजन पूर्वक सभ्यों के ह्रदय को जो उद्वेलित कर दे, वही नाट्य है। नाट्य का वास्तविक अर्थ है जो पुरूषार्थ चतुष्टय के साथ अर्थात् धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के साथ–साथ राजाओं अमात्यों के लिए जो शिक्षाप्रद हो, जो सम्पूर्ण जगत के हितों का उपदेशक हो, श्रमार्त,दुःखार्त, शोकार्त के लिए सुखकर एवं शान्तिदायक हो, वह नाटक है। आचार्य भरत नाट्य के स्वरूप को अभिव्यंजित करते हुए कहते है कि[6]:

हितोपजननंलोके धृतिक्रीडासमन्वितं
दुःखार्तानाम् श्रमार्तानां शोकार्तानाम्।
तपस्विताम् विश्रान्तिजननं लोकेनाट्यमेतत् भविष्यति ।।

उपरोक्त का तात्पर्य यह है कि नाट्य में केवल हमारे या देवताओं के चरित्रों का कल्पना द्वारा अनुकरण या अभिनय नहीं है किन्तु नाट्य में समस्त भावों का प्रस्तुतीकरण होता है। नाटक की सर्व समावेशी प्रकृति का उल्लेख करते हुए आचार्य भरत का मन्तव्य है कि नाट्य में धर्म परायणों के लिए धर्म है, काम प्रयोजनों में प्रवृत्ति रखने वालों के लिए इसमें काम का समावेश है। इसी प्रकार अविनयी एवं दुष्टों के लिए इसमें दण्ड का विधान है, तथा मदान्ध के दमन के लिए अनेक क्रिया विधानों का विधान है। नाट्य विधान में नपुंसकों के लिए धृष्टता का तथा अपने को वीर समझने वालों के लिए वीरता का, अबोध के लिए बोध का, मनीषियों के लिए मनीष का स्रोत नाटक ही है। यह राजाओं, महाराजाओं एवं प्रभुत्वशाली व्यक्तियों के लिए ऐश्वर्य एवं विलास है। वस्तुतः नाट्य समाज के उत्तम मध्यम तथा अधम मनुष्यों के लिए हित संवर्धक है। यह नाटक देवताओं के नेत्रों का प्रसाधन करने वाला यज्ञ है। स्वयं महादेव जी ने उमा से विवाह करके अपने शरीर में इसके दो भाग कर दिये–ताड़व तथा लास्य। इसमें सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण समान रूप से व्याप्त है इसलिए भिन्न–भिन्न रूचि वाले लोगों के लिए नाटक एक उत्सव है जिसमें सबको समान आनन्द मिलता है। महाकवि कालिदास के नाटकों का अनुशीलन करने से यह बात स्पष्ट होती

है कि इसमें नाट्य लेखन की परम्परागत शैली के साथ नवीन शैली का भी प्रवर्तन किया गया है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में महाकवि कालिदास की नाट्यकला अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गई है। यह नाटक संपूर्ण नाटय साहित्य में उत्कृष्टता का प्रतिमान बन गया है। नाट्यकला के साथ ही साथ महाकवि कालिदास विरचित ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' में अनेक ललित कलाओं का भी अनुपम निरूपण प्राप्त होता है जिसका विवेचन इस प्रकार हैः

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वास्तुकला का निरूपणः– महाकवि कालिदास की कालजयी रचना ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' के आद्योपांत अनुशीलन से वास्तुकला से सम्बन्धित अनेक उल्लेख प्राप्त होते है। इन विवरणों से महाकवि कालिदास की वास्तुकला सम्बन्धी सूक्ष्म दृष्टि एवं व्यापक ज्ञान का स्पष्ट निदर्शन प्राप्त होता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के तृतीय अंक में लतामण्डप का वर्णन प्राप्त होता है।[7]

इससे ज्ञात होता है कि लतामण्डपों एवं उद्यानों में विश्राम एवं मनोरंजन हेतु लतामण्डपों का निर्माण किया जाता था। जब राजा दुष्यन्त विरहावस्था में शकुन्तला को देखना चाहते थे तो वे अनुभव किये कि बेल से घिरे इस लतामण्डप में मेरी प्रिया शकुन्तला उपस्थित होगी, क्योंकि इस लतामण्डप के साफ स्वच्छ गौरवपूर्ण बालुका से युक्त द्वार पर आगे से ऊँची और पीछे से जघनस्थ भार से दबी हुई ताजी पदपंक्ति दृष्टिगोचर हो रही है। इससे ज्ञात होता है कि लतामण्डपों को वास्तुविधान के अनुसार बनाया जाता होगा। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में लतागृह तथा वेतन लतागृह का वर्णन प्राप्त होता है। शकुन्तला के विरह क्लान्त दुष्यन्त लतागृह में अल्पकाल विश्राम करना चाहता है। इससे ज्ञात होता है कि लतागृह आश्रमों तथा उद्यानों में बनाये जाते थे इसी प्रकार ऋषि आश्रमों में यज्ञशाला भी बनाई जाती थी। यज्ञशाला के निर्माण में ज्यामिति एवं वास्तुकला का विशेष ध्यान रखा जाता था। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक में यज्ञशाला का उल्लेख प्राप्त होता है।[8]

नगरों, ग्रामों, एवं आश्रमों में सरोवर का निर्माण किया जाता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् कि पंचम अंक में यज्ञशाला का वर्णन प्राप्त होता है।[9]

यज्ञशाला के इस विवरण से ज्ञात होता है कि यज्ञशाला का निर्माण वास्तुविधान के अनुसार किया जाता था। यज्ञशाला के निर्माण के साथ–साथ मार्ग का भी निर्माण किया जाता था। इसी प्रकार यज्ञशाला के साथ–साथ चबूतरे के निर्माण का उल्लेख प्राप्त होता था। इस प्रकार यज्ञशाला को मार्ग द्वार एवं चबूतरे से सुसज्जित किया जाता था। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि राजप्रसाद का विधिवत् निर्माण किया जाता था, जिसमें वास्तुकला के समुन्नत होने का प्रमाण प्राप्त होता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शयनकक्ष का विवरण प्राप्त होता है।[10]

राजमहल के समीप ही प्रमदवन भी होता था। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में प्रमदवन का उल्लेख प्राप्त होता है।[11]

प्रमदवन राज उद्यान होता था जो कि रनिवास के समीप होता था। इसमें सर्वसाधारण के जाने की अनुमति नहीं होती थी। वास्तुकला की दृष्टि से राजप्रसाद उद्यानों से सुसज्जित होते थे। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में मेधप्रतिछिन्न महल, जो कि अत्याधिक ऊँचे होते थे, का उल्लेख प्राप्त होता है।[12]

मेधप्रतिछन्न महल में सोपान मार्ग का निर्माण किया जाता था। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के षष्ठ अंक में सोपान मार्ग का उल्लेख प्राप्त होता है।[13]

सोपान प्रसाद का प्रमुख अंग होता था, जिसके निर्माण में वास्तुकला का निदर्शन प्राप्त होता है। इस प्रकार महाकवि कालिदास की कालजयी रचना अभिज्ञानशाकुन्तलम् वास्तुकला के विविध निरूपणों से सुसज्जित प्रतीत होती है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में मूर्तिकला का निरूपणरू–महाकवि कालिदास के नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् में मूर्तिकला का प्रसंगानुसार निरूपण प्राप्त होता है। भारतीय समाज में मूर्तिकला का प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। प्राचीन भारतीय विश्वास के अनुसार मूर्ति रचना कला और चित्रकला का मुख्य उद्देश्य धार्मिक स्मारक एवं अलंकरण है। इस संदर्भ में इसका उद्देश्य वास्तुकला के निकट का रहा है। मूर्तिकला और चित्रकला को

वास्तुकला की आश्रित कला माना गया हैं। प्राचीन काल से ही मूर्ति बनाने के दो ही उद्देश्य रहे है – प्रथम अतीत की किसी स्मृति को चिरस्थाई बनाना और द्वितीय किसी अमूर्त भाव को आकार प्रदान करना। यदि सारे संसार की सर्वकालीन प्रतिमाओं का विवेचन करें तो इनका निर्माण बिना देश–काल के बन्धन के मुख्यतः उपरोक्त दोनों प्रेरणाओं से ही हुआ है। मूर्तिकला में ऐतिहासिक मूर्तियाँ अतीत को जीवन्त बनाये रखने के लिए तथा धार्मिक एवँ कलात्मक मूर्तियाँ अमूर्त भावों को साकार स्वरूप प्रदान करने के लिए बनाई गई है। वस्तुतः धार्मिक भावनाओं में उपासना में जो अतीन्द्रिय, बुद्धिग्राह्य, आत्यन्तिक सुख प्राप्त होता है तथा रागात्मक अभिव्यक्ति में जो लोकोत्तर सुख है, वह निराकार को आकार प्रदान करता है। वस्तुतः हमारे देश की मूर्तिकला में मुख्यतः अमूर्त को मूर्त रूप देने की ओर अग्रसर रही है। भौतिक रूप का निदर्शन करना ही उसका मुख्य उद्देश्य रहा है। धार्मिक मूर्तियों के अतिरिक्त अतीत की स्मृतियों को जीवंत बनाये रखने के लिए स्मारक मूर्तियाँ भी बड़ी संख्या में बनाई जाती थी। स्मारक मूर्तियों का निर्माण महाभारत काल में प्रभूत्त मात्रा में हुआ है। महाकवि कालिदास का काल कला और साहित्य की दृष्टि से स्वर्णकाल माना जाता है। अधिकांशतः मनीषियों ने महाकवि कालिदास को गुप्तकालीन माना है। गुप्तकालीन शासक परमभागवत होते थे। गुप्तकाल में उदयगिरि की धार्मिक गुफायें कालिदास के काल में रम्य गुफाओं के रूप में मेघदूत में वर्णित है। महाकवि कालिदास ने अपनी रचनाओं में अनेक स्थानों पर मूर्तिकला का उल्लेख किया है। महाकवि कालिदास की रचना 'विक्रमोर्वशीयम्' में कालिदास ने लिखा है कि, मयूर रात बीतने पर निद्रालु होने के कारण अपने अड्डों पर शिथिल होकर बैठते है, मानो वे मूर्तिमयी आकृतियाँ हों। रंगों में चित्रित उत्कीर्ण का यह सुन्दर सन्दर्भ है। मथुरा संग्रहालय की भास्कर कला प्रदर्शनी में उक्त दोनों संकेतों का उत्कृष्ट उदाहरण है। गोलाई में उत्कीर्ण मयूर की एक सुन्दर मूर्ति यहाँ सुरक्षित है। इस प्रकार महाकवि कालिदास ने कुमारसम्भवम् में गँगा एवं यमुना की चामर वाहिनी मूर्तियों का उल्लेख भी किया है। रघुवंश महाकाव्य में उजड़ी अयोध्या के वर्णन में स्तम्भों पर उत्कीर्णित नारी मुर्तियों का वर्णन प्राप्त होता है। इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है कि 'स्तम्भों' पर उत्कीर्ण नारी मूर्तियां जो धूल धूसरित हो गई है, और जिनकी रंग रेखायें मिट गई है, उनके स्तनों के संसर्ग में आकर कृष्ण सर्पो ने जो केंचुल छोडी है वे उनके स्तनों को ढ़कने के उत्तरीय हो रही है। महाकवि कालिदास ने कुमार सम्भवम् में असंख्य देव प्रतिमाओं का तथा रघुवंश महाकाव्य में मूर्ति निर्माण का उल्लेख किया है। महाकवि कालिदास की कालजयी रचना अभिज्ञानशाकुन्तलम् के मंगलाचरण में मूर्तिकला का उल्लेख किया है।[14] मंगलाचरण में प्रार्थना की गई है कि जो मूर्ति ब्रम्हा जी की प्रथम कृति है अर्थात् जो जलमयी मूर्ति है, जो विधि पूर्वक हवन किये गये हवि की वृत आदि ध्वनिय दृव्य को देवताओं तक पहुँचाती है। अग्निमयी मूर्ति और जो मूर्ति हवन करने वाली है, अर्थात् यजमान की मूर्ति और जो मुर्तियां दिन रात का विभाजन करती है, अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा रूपी मूर्ति जो मूर्ति शब्द गुण वाली है अर्थात् विश्व को व्याप्त करके अवस्थित है, अर्थात् जिस मूर्ति से प्राणिमात्र अवस्थित है, अर्थात् आकाश रूपी मूर्ति जो मूर्ति समस्त बीजों को उत्पन्न करने वाली मूर्ति है अर्थात् पृथ्वी रूपी मूर्ति इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध इन अष्टमूर्तियों से युक्त भगवान शिव आप सब की रक्षा करें।

दृष्टव्यः– या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधतः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में चित्रकला

ललित कलाओं के रूप में चित्रकला का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय संस्कृति द्वारा प्राचीनकाल से ही रंग और रेखा के एक सुविकसित एवं कुशलतापूर्ण प्रयोग पर पहुँचने में निपुण थी। भारतीय मनीषा की यह सौन्दर्य दृष्टि जन्मजात प्रतीत होती है, जो गुफाओं में निर्मित जोगीमारा, अजन्ता, बाघ एलोरा, बादामी, सितनवासल आदि स्थानों में अपनी सफलता की चरम सीमा के रूप में अभिव्यक्त हुई है। संस्कृत साहित्य में प्राचीनकाल से ही चित्रकला सम्बन्धी विवेचन प्राप्त होता है। प्राचीन भारतीय चित्रकला में प्रकृति चित्रों को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। भारतीय कलाकारों

के अंतःकरण में प्रकृति प्रेम आदिकाल से जागृत था जो विभिन्न कला कृतियों में अभिव्यक्त हुआ है।

विष्णुयोत्तरपुराण में चित्रकला को सर्वश्रेष्ठ बताया गया हैं इसमें कहा गया है कि यह धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष को देने वाली है जिस घर में चित्र की प्रतिष्ठा की जाती है वहाँ पहले ही मंगल होता है। इसी प्रकार चित्रकला का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार पर्वतों में सुमेरू श्रेष्ठ है, पक्षियों में गरूड़ प्रधान है, उसी प्रकार मनुष्यों में राजा उत्तम है, उसी प्रकार कलाओं में चित्रकला श्रेष्ठ है।[15]

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में चित्रशास्त्र के विषय में विस्तार से चर्चा की गई है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में चित्रों को चार रूपों में विभाजित किया गया है:– सत्य, वैणिक, नागर और मिश्र संसार की वस्तुओं का तदवत् चित्रित करना ''सत्य'' कहा जाता है। जिस चित्र में शरीर के अंगो का निर्माण अनुपात में किया जाता है, उसे वैणिक कहा जाता है। इस प्रकार के चित्र में आधार सुन्दर रेखायें कोमल तथा चारों ओर दृश्य हो। नागर चित्र वे है जिसमें सभी अंगदृढ़ रेखाओं द्वारा दिखाये जाते है। ये चित्र न अधिक बड़े होते है और न अधिक छोटे होते है। इस प्रकार के चित्रों में अलंकार की अधिकता नहीं होनी चाहिए। मिश्र चित्र वे है जिसमें सत्य, वैणिक, और नागर का मिश्रण होता है। चित्र में सादृश्य दिखाना चित्र की सबसे बड़ी विशेषता मानी गई है। सूत्रकार का कहना है कि अच्छे चित्र वही है जिसमें माधुर्य, ओज, सजीवता और जीवित प्राणियों के तरह की चेतना प्रतिबिम्बित होती हो। चित्रसूत्र में पाँच प्रकार पुरूषों तथा पाँच प्रकार की स्त्रियों का वर्णन किया गया है। पुरूषों के पाँच प्रकार है– हंस, भद्र, मालव्य, रूचक, शशक। इसी प्रकार पाँच प्रकार की स्त्रियां मानी गई है। इस ग्रन्थ में इनके लक्षणों एवं अंग–प्रत्यंग की लम्बाई एवं चौड़ाई के अनुपात का विस्तार से वर्णन किया गया है। सिर के बालों को चार प्रकार का बताया गया है– तरंग की भाँति, सिंह केशर की भाँति, वर्धर और सन की भाँति। इसी प्रकार नेत्र भी आकर के अनुसार कई प्रकार के बताये गये है। यथा–धनुष के आकार जैसे–मछली के उदर भाग, जैसे–नीलकमल के पत्र, जैसे–पदमपत्र और शेष के आकार वाले बताये गये है। देवताओं, ऋषियों, राजओं, साधारण पुरूषों आदि के नेत्र किस प्रकार के होते है, इसका निरूपण किया गया है। नौ प्रकार के चित्रों को बताया गया है–त्रिज्वागत, अनृज, साचीकृत, अर्धविलोचन, पार्श्वायता, परावृत्त, पृष्ठागत, पुरावृत्त, एवं समागत्। इन चित्रों के भी कई भेद बताये गये है। क्षयवृद्धि भी तेरह प्रकार की बताई गई है– पृष्ठागत, अवक्रजुगत, मध्य अर्धाद, साचीकृत मुख, नत, गण्डपराव्रत पृष्ठागत, पार्श्वागत उल्लेप, चलित, उत्तान एवं वलित, इनको चित्रित करने की विधि भी बताई गई है। चित्रसुत्र में भित्ति चित्र बनाने की विधि बताई गई है। प्रधान रंग पाँच प्रकार के माने गये है–श्वेत, कृष्ण, पीत, पीलापन के लिए श्वेत एवं नीला इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के मिश्रित रंगों का उल्लेख किया गया है। रंग तैयार करने के लिए सोना, चाँदी, ताँबां, अभ्रक, राजवन्त, सिन्दूर, राँगा, हरिताल, चूना, लाख झंगुर, तथा नील आदि पदार्थों का वर्णन किया गया है।

महाकवि कालिदास विरचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् का आद्योपांत अनुशीलन करने पर इस नाटक के नायक दुष्यन्त स्वयं में एक महान चित्रकार थे। अपने विरह की पराकाष्ठा पर उन्होंने अपनी प्रेयसी शकुन्तला का चित्र बनाया। शकुन्तला का विविध आभूषणों से श्रृंगार चित्रों के माध्यम से ही किया गया। चित्रकला और पृष्ठभूमि चित्रण तथा भित्ति चित्रों के बहुसंख्यक संकेतों से यह सिद्ध होता है कि महाकवि कालिदास के युग में चित्रकला में अभूतपूर्व उन्नति हुई थी। चित्रित दीवारों, दरवाजों, और गृह के भीतरी भाग में रात के समय प्रभावती बूटियों से प्रकाशित पर्वत, गुफायें, राज्य, की सहायता से संचालित चित्रपट, मनोहर पृष्ठभूमि रम्यतापूर्वक आयोजित चित्र भूमिकायें, रंग वैविध्य, आलेख्य पर तूलिका मंजूशा के संकेत मिलते है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में चित्र कला का मार्मिक निरूपण प्राप्त होता है। महाराज दुष्यन्त के द्वारा विरहावस्था की पराकाष्ठा में बनाये गये शकुंतला के चित्र की माढ़व्य प्रशंसा करता है। इसी प्रकार शकुन्तला की माँ मेनका द्वारा भेजी गई सानुमती नामक अप्सरा भी जब राजा की मानसिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने अदृश्य रूप से लता मण्डप में आती है। तब वह भी राजा की कलाकुशलता की प्रशंसा किये बिना नहीं रह पाती है। वह कहती है कि वह राजर्षि चित्रकला मे इतने कुशल है कि मुझे लगता है कि मेरे सामने मेरी सखी खड़ी है[16]:

इतने पर भी राजा को अपने बनाये चित्र से सन्तोष नहीं होता। वह चतुरिका को रंग तूलिका लाने का आदेश

देता है। माढ़व्य जब राजा से पूछता है कि आपको चित्र फलक पर क्या अंकित करना है, तो राजा कहता है कि[17] हिमालय पर्वत के पाद प्रदेश में बहती हुई मालिनी नदी अंकित करनी है। उस नदी तट पर हँस का जोड़ा सुखपूर्वक बैठा होगा। एक वृक्ष अंकित करना चाहता हूँ जिसकी शाखाओं पर वल्कल टंगे हो और उसके नीचे एक मृगी होगी जो कृष्ण मृग के सिंग से अपनी बाँई आँख खुजला रही होगी। यह मार्मिक दृश्य दुष्यन्त को बहुत ही व्याग्र करता है क्योंकि नैसर्गिक पशु–पक्षियों में जो प्रेम और विश्वास की पराकाष्ठा इस आश्रम में दृष्टिगोचर हुई उस विश्वास एवं प्रेम की परम्परा को वह अपने व्यक्तिगत जीवन में राज्य वैभव से सम्पन्न सभ्य एवं सुसंस्कृत वातावरण में चरितार्थ न कर सका और अपनी प्रियतमा का तिरस्कार करके अब विरह की अग्नि में विदग्ध हो रहा है। अपने हृदय में प्रज्वल्लित इस विरह अग्नि के ताप से मुक्ति के उपाय स्वरूप दुष्यन्त चित्र बनाना चाहता है। चित्रकला सहित अन्य कलाओं की विशिष्टता है कि वे दुःख से तप्त हृदय की शीतलता विश्राम प्रदान करती है। यदि व्यक्ति स्वयं में कलाकार हो तो उसकी पीड़ा चित्र, कविता, गीत संगीत आदि रूपों में सहज ही अभिव्यक्त हो जाती है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में शकुन्तला के चित्र के माध्यम से दुष्यन्त की चित्रकला, मर्मज्ञता एवं भावप्रवणता सहज ही अभिव्यक्त हो जाती है। महाकवि कालिदास का यह निरूपण चित्रकला की श्रेष्ठता का प्रमाण एवं दृढ़ प्रतिमान हैं।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में संगीतकला का निरूपण

महाकवि कालिदास संगीत कला के मर्मज्ञ एवं निष्पात नाटकार है। नाटक में संगीतकला के तीनों आयामों गायन, वादन तथा नृत्य का मणिकान्चन संयोग एवं प्रयोग प्राप्त होता है। गीतवाद्य तथा नृत्यं संगीतत्रयंम् उच्चयते की सूक्ति महाकवि कालिदास की रचनाओं में साकार हो उठती है। महाकवि कालिदास की कालजयी रचना अभिज्ञानशाकुन्तलम् में संगीतकला का मार्मिक उल्लेख प्राप्त होता है। इस नाटक का शुभारम्भ मंगलाचरण के गायन से होता है। नटी द्वारा सूत्रधार से यह पुछे जाने पर कि नाटक के शुभारम्भ में उसे क्या करता चाहिए? सुत्रधार कहता है कि इस सभा के अनुरजंन के लिए ग्रीष्म ऋतु के अनुरूप गीत गाना चाहिए। इससे यह भी द्योतित होता है कि अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का प्रथममंचन ग्रीष्म ऋतु हुआ था। सुत्रधार द्वारा ग्रीष्मऋतु के मनोहारी चित्रण से तुष्ट होकर नटी एक सुमधुर गीत गाती है। संगीत कला का यह शुभारम्भ नाटक को एक मनोहारी शुरूआत देता है तभी तो सूत्रधार कहता है '' प्यारी तुमने अच्छी सुक्ति दिलायी। इस समय तो मैं भूल ही गया था क्योंकि तुम्हारे इस मनोहर गीत के राग से सहसा मुग्ध होकर मैं उस प्रकार भूल गया जैसे कि अति वेगवान हिरण राजा दुष्यन्त को दूर खींच ले गया।[18]

अभिज्ञानशाकुन्तलम् की यह प्रथम सांगीतिक प्रस्तावना उसकी श्रेष्ठता का प्रथम प्रमाण प्रस्तुत करती है। इस प्रकार संगीत कला, नाटक कला से संयुक्त होकर एक ओर अपना विस्तार करती है, वहीं दूसरी तरफ अन्य कलाओं में लालित्य संवर्धन करती है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के तृतीय अंक में शकुन्तला द्वारा गीतिका लेखन का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इस प्रसंग में गीत लेखन की विभिन्न अवस्थाओं का भी ज्ञान प्राप्त होता है। शकुन्तला द्वारा रचित इस गीतिका का भाव सौंदर्य महाकवि कालिदास की काव्य प्रतिभा एवं तत्कालीन राज ललनाओं की गीत रचना कौशल का द्योतक है। अभिज्ञानशाकुन्लम् पंचम अंक का प्रारम्भ संगीतशाला के स्वर आलाप आदि के उल्लेख से होता है। सिंहासनारूढ़ राजा दुष्यन्त से विदूषक संगीत शाला में गाये जा रहे गीत को सुनने के लिए कहता है। इस प्रकार महाकवि कालिदास की रचना अभिज्ञानशाकुन्तम् के कथानक् में संगीतकला एवं संगीत के विविध पक्षों का उल्लेख प्रमुखता से प्राप्त होता है। तात्पर्य यह है कि ललित कला के रूप में संगीत कला का नियोजन महाकवि कालिदास के नाटकों में बड़ी कुशलता के साथ किया गया है। संगीत कला के साथ अन्य ललित कलाओं का मणिकान्चन संयोग महाकवि कालिदास के नाटकों की उत्कृष्टता में सहायक सिद्ध होता है। संगीत कला सम्बन्धी इन विविध उल्लेखों से जहाँ एक ओर संगीत कला के विविध पक्ष उद्घटित् होते है, वहीं महाकवि कालिदास की सांगीतिक विद्वता एवं प्रतिभा का भी बोध होता है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् की काव्यकला

अभिज्ञानशाकुन्तलम् कालिदास की सर्वोत्कृष्ट नाट्य रचना है जिसमें संयोग तथा विप्रलम्भ दोनों श्रृगारों की

ऐसी ललित एवं हृदय स्पर्शी मन्दाकिनी इसमें प्रवाहित हुई है कि सहृदय भावुक उसमें अवगहन करते हुए ही नही गहाता फिर भी संयोग श्रृंगार अंगी विप्रलम्भ श्रृगांर वीर, अद्भुत, करूण, हास्य, भयानक, रौद्र, वात्सल्य और शान्त रस अंग है। शाकुन्तलम् का प्रधान रस श्रृंगार है। श्रृंगार के दोनों पक्षों में प्रधानतः संयोग श्रृंगार को ही अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथम तीन अंको में संयोग श्रृंगार ही प्रमुख है। प्रथम अंक में वृक्ष सिंचन लता शकुन्तला को देखकर अनुराग उत्पन्न होता है–मधुरमासां दर्शनम्, शुद्धान्त, दुर्लभमिदंवपुः[19]

अभिज्ञानशाकुन्तलम् शकुन्तला पर आसक्त होकर दुष्यन्त मन ही मन उसकी प्रशंसा करता है[20]– प्रथम अंक से तृतीय अंक तक संयोग श्रृंगार रस की धारा सप्तम अंक में पुनः दुष्यन्त एवं शकुन्तला के मिलन में पुष्ट होती है। विप्रलम्भ श्रृंगार के बिना संयोग श्रृंगार पुष्ट नहीं होता इसलिए अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी संयोग श्रृंगार की भी योजना की गई है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के द्वितीय अंक, तृतीय अंक के प्रारम्भ एवं अंत में तथा पूरे षष्ठम् अंक में विप्रलम्भ श्रृंगार रस का ही पूर्ण रूप से वर्णन किया गया है। द्वितीय अंक में विरही दुष्यन्त शकुन्तला को सुलभ न मानकर खेद प्रगट करता है।[21] कामी व्यक्ति की भाँति शकुन्तला की चेष्टाओं को अपने लिए ही मानकर आत्म सन्तोष का अनुभव करता है।[22] उसके अनुपम सौन्दर्य को विधाता की अनुपम कृति मानता है।

निष्कर्ष

सारतः महाकवि कालिदास के समग्र ग्रन्थ विशेषतः एवं प्रसंगतः अभिज्ञानशाकुन्तलम् काव्य कला के विभिन्न उपादानों से ओत–प्रोत है। रस अभिव्यंजना, अलंकार, योजना एवं छन्द विधान की दृष्टि से महाकवि कालिदास के तीनों नाटक उत्तरोत्तर श्रेष्ठता को प्राप्त हुए है। काव्यकला के मंजुल समावेश से महाकवि कालिदास की नाट्यकला अपने पूर्ण रूप में विकसित हुई है। महाकवि कालिदास की भाषा–शैली, कथानक एवं काव्य कला के अन्य अवयव उसकी नाट्यकला को अलंकृत करते है। काव्यकला की दृष्टि से महाकवि कालिदास की रचना अभिज्ञानशाकुन्तलम् सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य की रचनाओं का सिरमौर है।

सन्दर्भ सूची

1. अभिनव दर्पण, श्लोक–15।
2. नाट्यशास्त्र 6/16।
3. दशरूपक 1/6।
4. दशरूपक 1/6।
5. नाट्यदर्पण भूमिका।
6. नाट्य दर्पण पृ. 6।
7. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, तृतीय अंक – 123, पृ. 162।
8. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, चतुर्थ अंक, पृ. 179।
9. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, चतुर्थ अंक, पृ. 203।
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, चतुर्थ अंक, पृ. 179।
11. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, षष्ठम् अंक, पृ. 308।
12. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, षष्ठम् अंक, पृ. 338।
13. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, षष्ठम् अंक, पृ. 351।
14. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मंगलाचरण, पृ. 1।

15. विष्णु धर्मोत्तरपुराण।
16. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, षष्ठम् अंक, पृ. 324।
17. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, षष्ठम् अंक श्लोक, पृ. 17।
18. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रथम् अंक श्लोक, पृ. 05।
19. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/17।
20. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/19–20।
21. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2/1।
22. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2/2।

——==00==——